सैन्धव सभ्यता का सामाजिक पहलू

सिन्धु उपत्यका के ध्वंसावशेष निश्चित रूप से नगर सभ्यता के अनोखे दर्पण एवं प्रबल प्रमाण हैं। पूर्वकालिक उत्तर-प्रस्तरीय सभ्यता, पूर्णतः पारिवारिक एवं अर्धग्रामीण जीवन-सरणी का बोधक है। मध्यकाल में पनपनेवाली सैन्धव की पूर्ण विकसित नगर सभ्यता निश्चय ही आश्चर्यजनक थी। इस सभ्यता में पूर्ववर्ती प्रस्तर-युग एवं तत्कालीन ताम्र-युग का अद्भुत सामंजस्य था। उत्तर-पाषाण-युग में सामाजिकता के जिस बीज का प्रस्फुटन हुआ था, वह क्रमशः विकसित होता हुआ, परिवार तथा ग्राम के दायरे को लाँघता हुआ, नगर एवं देश में तो फैला ही, उसने विदेशों तक में अपना प्रभाव-क्षेत्र बनाया था। इस काल में जीवन-सरणी का प्रत्येक अंग पूर्णतः विकसित हो चुका था। सार्वजनिकता एवं समष्टिवादिता तत्कालीन जीवन के प्रमुख मूल्य-बोध थे। सभ्यता नगर एवं व्यापार-प्रधान हो चली थी। अतः यह सभ्यता स्थानीकरण एवं विशेषीकरण का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(अ) सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन

वास्तविक अर्थों में प्रथमतः भारतीय जीवन-बोध का सुव्यवस्थित गठन सैन्धव संस्कृति ही प्रस्तुत करती है। सिन्धु उपत्यका का जन-जीवन पूर्णतः शान्त पारिवारिक आदर्श का तो अनुगमन करता ही था, विभिन्न श्रेणियों की संस्थाओं का उपभोग करता तथा आदर्श समाज एवं राज्य के जीवन्त सुख और गौरव से भी परिपूर्ण था। तत्कालीन समाज ग्राम से नगर एवं परिवार से बृहत् समाज की सीमाओं का अति-

---

1. ह्वीलर, वही, पृ० 9, 10, 134; द्रष्टव्य, मैके, ई०, अर्ली इण्डस सिविलिज़ेशन (द्वितीय संस्करण); पिगोट, प्री-हिस्टरिक इण्डिया।
2. दीक्षित, काशीनाथ, प्री-हिस्टरिक सिविलिज़ेशन इन इण्डस वैली।

क्रमण करता हुआ अन्तरदेशीय जीवन जीने लगा था। विभिन्न उद्योग धन्धे, व्यापार, कृषि एवं पशुपालन ने व्यक्तियों को समूहों में विभक्त कर दिया था। बुद्ध-युगीन श्रेणी-व्यवस्था का बीज सिन्धु सभ्यता के युग में ही पड़ चुका था। जाति का विभाजन जीविकोपार्जन के साधनों के आधार पर व्यवस्थित हो चुका था। ईदृशः तत्कालीन वर्ग में विभक्त समाज पूर्णतः सुसंगठित था।

(i) **पुनर्सुव्यवस्थापन की समस्या : एक चुनौती**—सैन्धव वासियों के सामाजिक गठन के पीछे एक चुनौती का हाथ था। जैसा इतिहासकारों का अनुमान है, सिन्धु-वासी पहले उत्तरी पहाड़ी इलाके के निवासी थे एवं वहाँ पूर्णतः व्यवस्थित थे। उनका जीवन पूर्णतः स्थिर था। परन्तु प्राकृतिक झंझावात एवं शनैः शनैः जलवायु के परिवर्तन ने उनके जीवन में अस्थिरता ला दी। अतः वहाँ बने रहने में उनके समक्ष अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं। जीविकोपार्जन की असुविधा एवं प्रतिकूल जलवायु ने वहाँ के मूल निवासियों को दक्षिण अभियान के लिए विवश किया। इस अभियान में वे अलग अलग दलों में बँटकर नदियों की घाटियों में जा बसे। उपजाऊ भूमि एवं प्रचुर जल की सुविधा उनके लिए घाटी में बसने का प्रमुख कारण बनी। यही कारण है कि प्रारम्भिक समस्त सभ्यताएँ नदी के तट पर ही पनपीं। किन्तु इस स्थानान्तरण ने इन लोगों के जीवन में और अधिक उथल-पुथल मचा दी। नई जगह, नई जलवायु, नया वातावरण, टूटा हुआ सामाजिक जीवन, भंग परिवार एवं जीविका की समस्या ने कुल मिलाकर विस्थापित आवासियों को अधिक साहसी, श्रमिक एवं जीवन्त बना दिया। उनके समक्ष पुनर्व्यवस्थापन (re-co-or dination) की समस्या अत्यन्त प्रमुख थी। पंगु हुए सामाजिक जीवन को स्वस्थ एवं सुसंगठित बनाने की समस्या ही उनके जीवन में अद्भुत क्रान्ति लाने में समर्थ हुई। फलतः सर्वप्रथम उन अर्ध सभ्य व्यक्तियों ने अपने को वर्गों में बाँटकर समाज को सुसंगठित किया। वर्ग-विभाजन से कार्य बँटा। कार्य-विभाजन, श्रम एवं सहयोग से ही उनके जीवन की समस्त समस्याएँ सुलझीं। ह्वीलर के अनुसार यही सुव्यव-स्थापन तत्कालीन सामाजिक सुसंगठन का मूल कारण था।

(ii) **वर्ग-विभाजन**—नयी सभ्यता बनाने एवं समाज को अनुशासन में बाँधने के उद्देश्य से वर्ग-विभाजन जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता बन गई। कृष्ण राय-चौधरी तत्कालीन समाज में उच्च एवं निम्न दो ही वर्गों की विद्यमानता स्वीकारते हैं। किन्तु नाहर के अनुसार तत्कालीन समाज में चतुर्वर्गों की व्यवस्था थी। ये चतुर्वर्ग थे—विद्वान् (पुजारी, ज्योतिषी एवं वैद्य आदि), योद्धा (सैनिक, जनरक्षक आदि), व्यापारी एवं श्रमजीवी (छोटे धन्धोंवाले)।

किन्तु उपर्युक्त विभाजन से कृषक की महत्ता एवं स्थिति का परिज्ञान नहीं होता। कृषक भी तत्कालीन सामाजिक समृद्धि के आधार थे। समकालीन पश्चिमी सभ्यताओं में पनपनेवाले वर्गों के समान सैन्धव सभ्यता-काल में भी सामाजिक विभाजन के इन तीन वर्गों के आधार वर्तमान थे :

(1) **उत्तम वर्ग**—इसके अन्तर्गत शासक, सामन्त, पुरोहित, ज्योतिषी, वैद्य, विद्वान् की उपजीव्यता थी। आज का ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ग तत्कालीन समाज में उत्तम वर्ग का प्रतिनिधित्व करता था।

(2) **मध्यम वर्ग**—यह वैश्य वर्ग का प्रतिनिधि वर्ग था। जमींदार, व्यापारी एवं कृषक आदि इस वर्ग के सदस्य थे। इस वर्ग में भी समृद्ध एवं साधारण जनों के उपवर्ग रहे होंगे।

(3) **निम्न वर्ग**—यह वैदिक शूद्र वर्ण का पर्याय था। दास, साधारण कारीगर तथा छोटे धन्धोंवाले व्यक्ति इस वर्ग के सदस्य थे।

प्रत्येक वर्ग का भान हमें तत्कालीन भवनों के भग्नावशेषों से होता है। विशाल महल, साधारण बड़े भवन एवं कच्चे पक्के छोटे आवास क्रमशः उपर्युक्त त्रिवर्ग के परिचायक हैं। तीनों वर्गों के कार्य बँटे हुए थे। सभी वर्ग अपना अपना कर्त्तव्य निबाहते हुए सामाजिक दायित्व के प्रति पूर्णतः जागरूक थे। सभी वर्ग सामाजिक चेतना से अनुप्राणित थे। यह वर्ग-विभाजन एक प्रकार का श्रम-विभाजन था। श्रम-विभाजन प्रचुर उत्पादन का मूल कारण सिद्ध हुआ। समाज की समृद्धि का भार मध्यम वर्ग पर ही अधिक था। इस वर्ग में विभिन्न धन्धों जैसे लोहार, बुनकर, बढ़ई एवं कुम्हार आदि का काम करनेवाली जातियाँ पनप रही थीं। अतः यह निर्विवाद है कि तद्युगीन समाज वर्ग-सिद्धान्त पर आधारित था। निश्चित विभाजन के कारण ही सामाजिक जीवन में पर्याप्त शान्ति, सौहार्द एव सहयोगात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता विद्यमान थी।

(iii) **मातृ-प्रधान समाज**—परिवार ही तद्युगीन समाज की इकाई थी। तत्कालीन परिवार मातृ-प्रधान थे। प्रागैतिहासिक समाज सदैव मातृ-प्रधान ही रहा। मातृ देवियों की मूर्तियों की प्रधानता इस तथ्य के सार्थक प्रमाण हैं। तत्कालीन परिवार के भिन्न भिन्न आवासावशेषों से यह ज्ञात नहीं हो पाता कि तद्युगीन परिवार संयुक्त थे या उनके सदस्य स्वतंत्रतापूर्वक पृथक् पृथक् जीवनयापन किया करते थे।

(आ) जागरूक नागरिक चेतना : शहरी सभ्यता

सिन्ध के खण्डहर निःसन्देह, अति सुन्दर एवं समृद्ध नगर के अवशेष हैं। नागरिक चेतना उस समय पूर्णतः जागृत हो चुकी थी, नहीं तो इतना भव्य नगर कभी नहीं बन पाता। शहरी सभ्यता का करीब करीब प्रत्येक चिह्न यहाँ उपलब्ध हुआ है। उस सुदूर अतीत में भी नगर-निर्माण-योजना का महत्व लोगों को ज्ञात था। नगर-व्यवस्था सुनियोजित थी। काशीनाथ नारायण दीक्षित के मतानुसार ऐसी उत्तम नगर-निर्माण-प्रणाली किसी अन्य प्राचीन देश में देखने को नहीं मिलती। उस काल के नगर किसी भी दृष्टि से आधुनिक शहरों से हीन नहीं थे।

(i) **सड़कों एवं गलियों की व्यवस्था**—नगर सड़कों द्वारा बराबर भागों में विभक्त था। सबसे बड़ी सड़क 33 फुट चौड़ी पाई गयी है। यह राजमार्ग रहा होगा। सभी अन्य सड़कें इसी से मिलती थीं। इसी मार्ग पर तिराहों एवं चौराहों के चिह्न पाये गये हैं। सड़कों की दिशाएँ उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम की ओर होती थीं। ह्वीलर ने वहाँ के एक चौराहे के अवशेष की तुलना 'आक्सफोर्ड सरकस' से की है। यह नगर का प्रमुख चौराहा था। इसी के कोण से शहर चतुर्भुजाकार में विभक्त था। राजपथों का अस्तित्व मोहेनजोदड़ो के अवशेषों से परिज्ञात होता है। सड़कों पर यथास्थान कूड़ेदानों की व्यवस्था थी। कूड़ेदानों की व्यवस्था सार्वजनिक स्वच्छता की द्योतक है। ऐसी सार्वजनिक चेतना तत्कालीन व्यक्तियों की विकसित नागरिक चेतना की परिचायक है। मोहेनजोदड़ो की दो सड़कों के सन्धि-स्थल पर एक भोजनालय होने का संकेत उपलब्ध होता है। सड़कों द्वारा नगर अनेक खण्डों में विभक्त था और इन खण्डों में मोहल्ले बने हुए थे। यहाँ भवन क्रमानुसार कतार में निर्मित पाये गये हैं। यहाँ प्रत्येक सड़क से गली निकली हुई पाई गई है। गलियाँ कई कई भवनों के मध्य से गुजरती थीं। ये तीन फीट से सात फीट तक चौड़ी होती थीं। सड़कों एवं गलियों की पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखा जाता था। निश्चय ही उस युग में नगरपालिका (म्यूनिसिपैलिटी) जैसी कोई संस्था सड़कों एवं गलियों का निर्माण तथा सफाई का कार्य करती होगी।

गार्डन चाइल्ड के अनुसार "गलियों की सुन्दर पंक्तियों .... से इस बात का संकेत मिलता है कि यहाँ कोई नियमित नगर-शासन था। इसका अधिकार इतना सुदृढ़ था कि बाढ़ों के कारण बार बार निर्मित भवनों की तैयारी के समय, निर्माण एवं सड़कों की सुनिश्चित पंक्तियों को बनाये रखने के नियमों का पालन होता था।"[1]

---

1. चाइल्ड, वी० गार्डन, ह्वाट हैपेण्ड इन हिस्ट्री; पगोट, प्री-हिस्टरिक इण्डिया, पृ० 165।

कृष्ण रायचौधरी के मत में सड़कों एवं नालियों की ऐसी सुव्यवस्था 18वीं शताब्दी तक पेरिस और लन्दन में भी नहीं हो पाई थी। जब सड़कों की इतनी अच्छी व्यवस्था थी, तब उस काल में निश्चय ही नागरिक बोध इतना विकसित रहा होगा कि राजपथ संबंधी नियमों का पालन अवश्य होता होगा।

(ii) **आवास-भवन**—ध्वंसावशेषों में भवन-निर्माण के दो आधार उपलब्ध हुए हैं। प्रथमतः तो सड़क द्वारा विभक्त चतुर्भुज क्षेत्रों में क्रम से निर्मित भवनों के ध्वंसावशेष पाये गये हैं। वे नगर-निर्माण की सुनियोजना के सूचक हैं। भवन-निर्माण का दूसरा आधार वर्गभेद था। विभिन्न वर्गों के आधार पर निर्मित आवास-गृह तत्कालीन वर्ग-व्यवस्था की ओर इंगित करते हैं।

उपलब्ध भग्नावशेषों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि मकान पूर्वनिश्चित नमूने के आधार पर ही बनाये जाते थे। मुख्यतः तीन प्रकार के भवनों एवं आवास-गृहों के अवशेष पाये गये हैं—विशाल भवन, साधारण बड़े आवास-गृह एवं सामान्य लघु गृह।

(1) **विशाल भवन** (Palace)—एक अति विशाल भवन का ध्वंसावशेष किला है, जिसकी चौड़ाई 85 फीट एवं लम्बाई 97 फीट है। इसमें 32 वर्ग फीट का आँगन है। इस प्रासाद में भीमकाय द्वार, बरामदा, हाल, बैठक का बड़ा कमरा एवं द्वारपाल की कोठरी पाई गई है। इनके अतिरिक्त भवन के भूमि-तल तथा ऊपरी तल पर भी बड़े-बड़े कमरों के ध्वंसावशेष पाये गये हैं। पूरे भवन का फर्श पक्की ईंटों द्वारा निर्मित है। इस भवन के दक्षिण में 20 विशाल स्तम्भों पर 90 वर्ग फीट का चौकोर कमरा पाया गया है। यह प्रासाद मोहेनजोदड़ो सभ्यता के मध्ययुगीन स्तर का प्रतीक है। यह प्रासाद कदाचित् राजमहल की अवशेष स्मृति का परिचायक है।

(2) **विशाल स्नानागार**—ध्वंसावशेष में उपलब्ध एक विशाल स्नानागार निश्चय ही सार्वजनिक रहा होगा। यह पक्की ईंटों द्वारा निर्मित है। यह जलकुण्ड 30 फीट लम्बा, 23 फीट चौड़ा और 8 फीट गहरा है। कुण्ड के दो तरफ जल-स्तर तक पक्की सीढ़ियाँ हैं। इसके चारों ओर बरामदे हैं। उनके पीछे गैलरियाँ एवं चारों ओर कमरे हैं। निकट ही कूपों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। कदाचित् इन्हीं से कुण्ड में जल भरा जाता होगा। महान् स्नानागार की कुल लम्बाई 180 फीट और चौड़ाई भी 180 फीट है। बाहरी दीवार आठ फीट मोटी है। इसमें से जल भरने एवं निकालने के निमित्त 6 फीट ऊँची नालियाँ बनाई गई थीं। दीवार इस प्रकार बनी थी कि उसमें से जल किसी

भी प्रकार रिस नहीं सकता था। पहले चार फीट चौड़ी ईंटों का स्तर, फिर छिली ईंटों की गच चूने से जोड़ी हुई मिली है, जो उसकी परिपुष्टता एवं स्वास्थ्य-रक्षा की सूचक है। स्वास्थ्य की दृष्टि का ध्यान तो इतना रखा गया है कि डामल का लेप सील टाँकने के लिए प्रयुक्त किया गया है। फिर पक्की ईंटों की सतह और तब झावाँ ईंटों के भराव का प्रावधान उस सभ्यता की स्वास्थ्य-दृष्टि का अवबोधक है। निकट ही एक हम्माम (उष्ण-वायुकृत मज्जन गृह) के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। 1950 की पूरी खुदाई एवं सफाई के उपरान्त इतिहासविद् इस हम्माम को अन्नागार प्रतिपादित करने लगे हैं। स्नानागार के कमरों के ऊपरी तल पर भी कमरे होते थे। उनमें सम्भवतः पुरोहितों का आवास रहा होगा। ये शुभ मुहुर्त पर पूजार्थ इसमें नहाते होंगे।[1] वैसे यह सार्वजनिक स्नानागार रहा होगा। यह स्नानागार तत्कालीन वास्तुकला की उत्कृष्टता का नमूना है। कार्लटन ने इसकी तुलना आधुनिक समुद्रतटीय होटल से की है। स्नानागार के उत्तर-पूर्व में एक अन्य भवन का स्नानागार मिला है। यह 230 फीट लम्बा एवं 78 फीट चौड़ा है। यह सम्भवतः उच्च राज्याधिकारियों का आवास रहा होगा।[2] ये सार्वजनिक सामूहिक इमारतें थीं। ये विशाल भवन उच्च वर्ग के आवास-गृह थे। इन भवनों के ध्वंसावशेषों से तत्कालीन शासक, राज्याधिकारी एवं पुरोहित आदि सम्मानित वर्ग के लोगों की जीवन-पद्धति की एक क्षीण झाँकी उपलब्ध होती है।

(3) **साधारण (सँझोले) भवन**—मोहेनजोदड़ो के उत्खनन में एक ही प्रकार के क्रमशः 16 मकानों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। दो समानांतर पंक्तियों में आठ-आठ मकान निर्मित हैं। इन समस्त मकानों के निर्माण का ढंग एक सा ही है। ये गृह निश्चय ही मध्यम वर्गीय आवास के प्रतीक हैं। इन भवनों के प्रमुख अंग थे—आँगन, पाकशाला, चूल्हे, दरवाजा, खिड़की, स्नानागार, शौचगृह, नाली, कूड़ादान, पानी रखने की जगह, एवं कुआँ आदि तथा दुमंजिले घरों में सीढ़ियाँ। इन घरों की दीवारें पाँच फीट तक मोटी होती थीं। दुमंजिले मकान में नीचे के तल की दीवारें अधिक मोटी होती थीं। इन मकानों के प्लास्टर के अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं। ये समस्त मकान चौकोर आकार के हैं। इनमें कमरे आँगन के चारों तरफ

---

1. मैके, ई०; इण्डस सिविलिज़ेशन, खण्ड 1, पृ० 20।
2. वही, खण्ड 1, पृ० 10।

होते थे। संभवत इनमें संयुक्त परिवार के लोग रहते थे, इसीलिये ये मकान काफी बड़े होते थे।

हड़प्पा एवं मोहेनजोदड़ो के भवनों के दरवाजे एवं खिड़कियाँ राजमार्ग की ओर नहीं पाई गई हैं। संभवतः, इसके मूल में पर्दा प्रथा की उपजीव्यता रही हो या फिर राजमार्ग की स्वच्छता के विचार से ऐसी अवधानता बरती गई हो। ह्वीलर महोदय ने सैंधव युगीन भवनों में खिड़कियों के अभाव का समर्थन किया है।[1] परिणामतः ऐसे भवनों में स्त्रियों का जीवन धूप और हवा से वंचित, मात्र आँगन तक ही सीमित रहा होगा, ऐसा वे प्रतिपादित करते हैं। उनकी उपर्युक्त मान्यता पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं है। ध्वंसावशेषों के न्यासों से यह सिद्ध है कि भवनों में खिड़कियाँ होती थीं।[2] ह्वीलर महोदय जब भण्डारगृहों में वातायनों का होना स्वीकार करते हैं[3] तो घरों में वातायनों के अभाव की बात स्वतः ही असिद्ध हो जाती है। तद्युगीन भवनों में हवा एवं रोशनी की पूर्ण व्यवस्था थी, यह उपलब्ध ध्वंसावशेषों से निर्विवाद रूप से सिद्ध है।

मोहेनजोदड़ो एवं हड़प्पा के भवन पूर्णतः सादे थे। इन भवनों में कलात्मकता एवं अलंकरण का अभाव पाया गया है। इन भवनों में अधिक सजावट नहीं पाई गई है। परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सैन्धव सभ्यता में कला के ज्ञान का अभाव था और यह समयुगीन अन्य सभ्यताओं से पिछड़ी हुई थी। यह तो सैन्धव वासियों की सादगी का परिचायक है। इसके साथ ही सादे भवनों से यह भी प्रकट होता है कि सैन्धव वासी 'कला उपयोगिता के लिये' सिद्धांत का पालन करनेवाले थे। त्रिपाठी के मतानुसार यह भी संभव है कि भवनों में अतीव भव्यता-प्रदर्शन में कमी लाकर सिंधु-घाटी धनाभाव का प्रदर्शन करना चाहते हों ताकि उन्हें कम कर देना पड़े।[4] ध्वंसावशेषों से यह तो स्वतः सिद्ध है कि सिंधु सभ्यता के निवासी भवन-निर्माण-कला में पारंगत थे।

(4) **छोटे घर**—हड़प्पा में उत्तर की ओर नीचे, सात सात छोटे मकानों की दो पंक्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। ह्वीलर महोदय इन कतार बद्ध गृहों को ऐसे मजदूरों का मोहल्ला मानते हैं, जो दास के रूप में कार्य करते थे। संभवतः ये मजदूर छोटे कारीगर रहे होंगे। यह आवास-व्यवस्था समाज के तृतीय वर्ग के

---

1. ह्वीलर, वही, पृ० 49।
2. त्रिपाठी, रमाशंकर, वही, पृ० 17।
3. ह्वीलर, वही, पृ० 44।
4. त्रिपाठी, रमाशंकर, वही, पृ० 17, पादटिप्पणी।

निमित्त थी। समाज के तीनों वर्ग अलग अलग मोहल्लों में रहते थे। विभिन्न वर्णों के हेतु पृथक् पृथक् व्यवस्था, तद्युगीन आवास-सुव्यवस्थापन का द्योतक है।

(ii) **नालिका-प्रणाली**—तद्युगीन व्यवस्थित नालिका-प्रणाली से हमें सैंधव सभ्यता की उत्कृष्टता, नागरिक जागरूकता एवं स्वच्छता-प्रियता का परिचय मिलता है। प्रत्येक घर में नालिका की उचित व्यवस्था थी। दुमंजिले घरों में ऊपर से ढकी नालियों से नीचे आँगन की ढकी हुई नालियों में गन्दा पानी गिरता था। फिर ये घर की नालिकाएँ क्रमशः गली एवं सड़क की सार्वजनिक नालिकाओं से मिल जाती थीं। अन्त में इन नालिकाओं का गन्दा जल परनालों के द्वारा नगर के बाहर चला जाता था। नालिकाओं के बीच बीच में पानी रुकने के लिए, आधुनिक व्यवस्था के अनुरूप, छोटे छोटे गढ़ों के चिह्न पाये गये हैं। इन नालियों से गन्दगी की सफाई नियमित रूप से होती रहती थी। नालियाँ दो इंच से अठारह इंच तक गहरी होती थीं। इतनी अधिक सार्वजनिक स्वच्छता, तद्युगीन समाज में स्वास्थ्य के प्रति सजगता का प्रतीक है। फलतः समाज में गन्दगी से उत्पन्न बीमारियाँ भी कम ही होती होंगी। रायचौधरी के अनुसार[1]—"क्रीट की राजधानी मौसस को छोड़कर पानी निकालने का ऐसा प्रबन्ध शायद और कहीं नहीं था। संभवतः वर्षा के जल के निकास हेतु यह उत्तम व्यवस्था थी। सारा नगर नालिकाओं से आवृत था।" सैन्धव सभ्यता की जल-निकास-योजना की उत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हुए ए० एल० वासम लिखते हैं :

> "The unique sewerage system ...is one of their most impressive achievements. No other ancient civilization until that of the Romans had so efficient system of drains."

निश्चय ही तद्युगीन नालिका-व्यवस्था किसी सुसंगठित सस्था की देखभाल का ही परिणाम होगी।

(iv) **ईंट**—सैंधव भवनों में ईंटों का प्रयोग नगर सभ्यता का सशक्त प्रमाण है। इस युग में पत्थर के प्रयोग का कहीं भी संकेत उपलब्ध नहीं होता। ध्वंसावशेषों में 20" × 10" × 3½" की ईंटें उपलब्ध हुई हैं। इस युग में ईंटें आग में पकाने के उपरांत भवन-निर्माण में प्रयुक्त होती थीं। सूर्य की धूप से पकाई गई ईंटों की नींव भवनों में डाली जाती थी तथा इन्ही ईंटों से छत भी बनाई जाती थी। घर बनाने में मिट्टी, चूना एवं जिप्सम का गारा प्रयोग में लाया जाता था। सैंधव युगीन ईंटों

---

1. रायचौधरी, कृष्ण, प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 31।

की सुदृढ़ता का परिचय हमें इसी तथ्य से मिल जाता है कि ये ईंटें इतने कालान्तराल के पश्चात् भी यथावत् वर्तमान हैं। उस युग में ईंटों को रँगने का प्रचलन भी था।

ध्वंसावशेषों से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण नगर के चारों तरफ सुरक्षा की दृष्टि से एक दीवार का निर्माण किया गया था। यह दीवार कच्ची ईंटों से बनाई गई थी। सैंधव-सभ्यता-युग की नगर-योजना एवं उत्कृष्ट भवन, एक ओर जहाँ तद्युगीन शहरी सभ्यता के परिचायक हैं, वहीं ये समृद्ध, स्वस्थ, शान्त एवं सन्तुष्ट जीवन के भी बोधक हैं। सुविस्तृत सामाजिक भावना ही इस महती नगर-योजना को कार्यान्वित कराने में सफल हो सकी थी। नगर-योजना का यह महत् कार्य परस्पर सहयोग एवं संगठन के अभाव में असम्भव था। ईदृशः यह सिद्ध होता है कि सैन्धव समाज सामाजिकता एवं नागरिकता की चैतन्य भावनाओं से पूर्णतः अनुप्राणित था। निश्चय ही सैन्धव सभ्यता का संपन्न और चैतन्य जन-समाज सशक्त एवं सप्राण सामाजिक जीवन का बोधक है।

(इ) सैन्धव सभ्यता का समृद्ध एवं खुशहाल जीवन

किसी भी समाज की समृद्धि एवं खुशहाली, उस समाज की आर्थिक स्थिति पर निर्भर होती है। अर्थोत्पादन से ही समाज की समस्त अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। सैन्धव समाज में भोजन एवं वस्त्र संबंधी कोई समस्या नहीं थी, वरन् धन के प्राचुर्य के कारण सैन्धव वासियों का जीवन शृंगारिक एवं विलासी हो उठा था।

(1) **भोज्य पदार्थ : अन्न**—सैन्धव समाज में कृषि जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन थी। कृषि की समृद्धि के हेतु प्रचुर वर्षा, नदी का पर्याप्त जल एवं उपजाऊ भूमि आदि यथेष्ट साधन उस समय मौजूद थे। सिंधु की उपत्यका में गेहूँ, जौ, मटर, राई आदि प्रमुख खाद्यान्न पैदा होते थे। मोहेनजोदड़ो में प्राप्त गेहूँ के दो दाने, पंजाब के वर्तमान गेहूँ से बहुत अधिक साम्य रखते हैं। तद्युगीन बीज पर्याप्त रूप से पुष्ट होते थे। तद्युगीन समाज में गेहूँ आदि की प्रचुरता इस सीमा तक थी कि गेहूँ को सहेजकर रखने के लिए अन्नागार की आवश्यकता पड़ती थी। इसी उद्देश्य से तद्युगीन समाज में विशाल अन्नागारों का निर्माण किया गया था। कृषि के तत्कालीन उपकरणों का हमें सही ज्ञान नहीं हो पाता। हाँ, पीसनेवाली सिल एवं बट्टे अवशेष रूप में अवश्य प्राप्त हुए हैं।

(1) **फल**—सैन्धववासी फलों के शौकीन थे। फलों में खजूर का बीज चित्त रूप में प्राप्त हुआ है। चित्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सैन्धव वासी नीबू, तिल, तरबूज एवं फलियाँ खाते थे। खुदाई में मिठाई एवं रोटी बनाने के

साँचे भी उपलब्ध हुए हैं। फल का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि तद्युगीन समाज में स्वास्थ्य की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था।

(2) **मांस**—सैन्धव लोग मांसाहार के प्रेमी थे। मांस एवं मछली सिन्धु समाज का प्रमुख भोजन था। उत्खनन से उपलब्ध अस्थियाँ (पशु एवं पक्षी दोनों की) एवं अर्ध-दग्ध खाल यह प्रमाणित करती हैं कि उस काल में गाय, बकरा एवं सुअर तीनों पशुओं का मांस खाया जाता था। मछली के अलावा अन्य जल-जीव जैसे घोंघे, आदि भी भोज्य रूप में खाये जाते थे। प्राप्त जले हुए घोंघे आदि इस तथ्य के प्रमाण हैं। मांस काटने के लिए पत्थर के औजार बनाये जाते थे।

(3) **दुग्ध**—तद्युगीन समाज में दूध, दही, मठा एवं घी आदि का बहुत उपभोग होता था। दुधारू पशुओं के प्रमाण हमें उत्खनन में प्राप्त हुए हैं।

(4) **ओषधि**—मोहेनजोदड़ो के उत्खनन में शिलाजीत प्राप्त हुआ है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि उस युग में ओषधियों का प्रयोग भी होता था। कर्नल स्यूयल का मत है कि सैन्धव वासी दवा के रूप में हरिण के सींग का चूर्ण खाते थे। उस काल में समुद्रफेन भी ओषधि के रूप में प्रयोग में लाया जाता था।

(5) **अन्नागार**—सैन्धव सभ्यता के युग में भोज्य व्यवस्था के अन्तर्गत जहाँ पाक-विद्या पूर्णतः विकसित हो चुकी थी, वहाँ अन्न के संचय की प्रवृत्ति में भी वृद्धि हुई थी। उत्तर-पाषाण-युग में तो व्यक्ति केवल अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए थोड़ा अन्न ही पैदा करता था, परन्तु सैन्धव काल में अन्न प्रचुरता से उपजता था। फलतः बहुल अन्न को विधिपूर्वक संग्रह करने की समस्या भी सैन्धव वासियों के सम्मुख थी। इसी समस्या के निदान-स्वरूप राज्य के निर्देशन में अन्नागार निर्मित किये गये थे। भग्नावशेषों में विशाल अन्नागारों के चिह्न पाये गये हैं। समयुगीन विदेशी सभ्यताओं में विशाल खत्तियों में अन्न भरकर रखने का चलन था, साथ ही वहाँ छोटे बड़े अन्नागारों के होने के भी संकेत मिले हैं।[1] सैन्धव उत्खनन में भी मोहेनजोदड़ो में एक और हड़प्पा में छह अन्नागारों के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। तद्युगीन अन्नागारों में बड़े बड़े हाल (50′ × 30′) एवं बरामदे होते थे। जिस विशाल अन्नागार के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं, वह 150 फीट लम्बा एवं 75 फीट चौड़ा है।

---

1. लेगरेन, एल०, उर एक्सकवेशन टेक्स्ट्स, 3, लन्दन, 1943;
   ह्वीलर, वही, पृ० 35, 43, 44, 134।

इस अन्नागार में बराबर बराबर आकार के 27 ब्लाक प्राप्त हुए हैं। इन अन्नागारों में अन्न चढ़ाने, उतारने एवं लादने की पूर्ण व्यवस्था थी। तद्युगीन अन्नागारों की सीढ़ियाँ पीछे की ओर नदी की तरफ भी पाई गई हैं। संभवतः यहाँ नदी से भी माल आता होगा। इस व्यवस्था के हेतु अवश्य ही कुछ कर्मचारी नियुक्त रहते होंगे। अन्नागार की सुव्यवस्था पर ह्वीलर के विचार उल्लेखनीय हैं :

"The granary, with its outstandingly massive construction, its careful ventilation and its vivid provision of loading facilities from outside, the citadel is a significant element in the citadel plan."

अन्नागारों में अन्न बड़े बड़े घड़ों एवं बर्तनों में रखा जाता था। सैन्धव समाज का यह अन्न-परिग्रह तद्युगीन समृद्ध उत्पादन का द्योतक और साथ ही उचित अर्थ-व्यवस्था का परिचायक है। इस व्यवस्था से यह प्रमाणित होता है कि आपत्ति-काल में सैन्धव वासियों के भूखों मरने की नौबत नहीं आती होगी। सैन्धव वासियों की यह सुदूर दृष्टि एवं उचित अन्न-व्यवस्था तद्युगीन जागरूकता का प्रतीक है। रोटी की चिन्ता के अभाव में ही तद्युगीन समाज के अन्य समस्त आयाम भी मुखरित हुए थे।

(ii) ~~वस्त्र~~—इस युग में वस्त्र-प्रयोग का उद्देश्य मात्र नग्नता एवं लज्जा को ढकना ही न था, वरन् वसन-प्रयोग के साथ कलात्मक सौन्दर्य, टिकाऊपन एवं ऋतु-अनुकूलता आदि तत्व भी जुड़ गये थे। तद्युगीन स्त्री एवं पुरुष के परिधानों में अंतर रहता था। उपलब्ध मूर्तियों के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि पुरुष शाल का प्रयोग करते थे। शाल को बायें कंधे के ऊपर से डालकर दाहिनी काँख के नीचे लेते हुए फिर ऊपर पहना जाता था। पुरुष का दाहिना हाथ इस परिधान में स्वतन्त्र रहता था। यद्यपि तत्कालीन परिधान में हमें अधोवस्त्र के प्रमाण उपलब्ध नहीं होते, किन्तु यह स्वतः प्रमाणित है कि शाल के साथ धोती जैसा कोई अधोवस्त्र अवश्य पहना जाता होगा। स्त्रियाँ सर के पीछे पंख के आकार जैसा वस्त्र पहनती थीं। स्त्रियों के इस वस्त्र का ज्ञान हमें उपलब्ध तद्युगीन भग्न मातृ-मूर्तियों से होता है। सैंधव युगीन पुरुष एवं स्त्रियाँ दोनों ही सर पर टोपी धारण करती थीं। इनकी टोपियाँ नुकीली होती थीं। तद्युगीन समाज में रंगीन वस्त्रों का भी प्रचलन था। समाज के समस्त वर्ग के लोग कलात्मक एवं सौंदर्य-पूर्ण वस्त्र पहनते थे। भग्नावशेषों में कुछ नग्न मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। परंतु ये मूर्तियाँ इस तथ्य की बोधक नहीं है कि सैंधव वासी अभी तक नग्न अथवा निर्वस्त्र रहते थे। इन मूर्तियों की नग्नता निश्चय ही

कला से प्रेरित और संबद्ध रही होगी। इस सभ्यता में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का चलन हो चुका था। सैंधव वासियों को सिलाई एवं बुनाई का भी ज्ञान हो चुका था। उत्खनन में प्राप्त सुइयाँ उनके सिलाई के ज्ञान की परिचायक हैं। इस काल में मुख्यतः सूती एवं ऊनी वस्त्रों का चलन था।

(1) **सूती वस्त्र**—सैंधव सभ्यता के उत्खनन में प्राप्त चरखा इस तथ्य का पोषक है कि सैंधव वासी सूत कातकर वस्त्र बनाते होंगे। उत्खनन में जले हुए सूती कपड़े के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। मई, 1950 की खुदाई में सूती वस्त्र सम्बन्धी अन्य चिह्न भी प्राप्त हुए हैं। मोहेनजोदड़ो में कपास से बना हुआ वस्त्र उपलब्ध हुआ है। तद्युगीन भवनों के ध्वंसावशेषों में सूत लपेटने वाली नलिकाएँ एवं तकुए भी प्राप्त हुए हैं। प्राप्त नलिकाओं एवं तकुओं से यह सिद्ध होता है कि सूत की कताई एवं बुनाई का काम उस काल में घर घर होता था। साधारण एवं बहुमूल्य दोनों प्रकार के चरखे सिंध उपत्यका के उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। गरीब जन संभवतः अपनी जीविका एवं आवश्यकता के हेतु साधारण चरखों पर सूत कातते होंगे, परन्तु अमीर व्यक्ति मात्र अपनी शौक पूरी करने के लिए ही बहुमूल्य चरखों का प्रयोग करते होंगे। उत्खनन में एक रजत-कलश से चिपका हुआ सूती कपड़ा मिला है। परीक्षण करने से ज्ञात हुआ है कि यह कपड़ा वर्तमान खादी से साम्य रखता है।[1]

(2) **ऊनी वसन**—ठण्ड से रक्षा के हेतु सैंधव वासी ऊनी वस्त्र भी पहनते थे। उत्खनन में प्राप्त भेड़ के चित्र यह प्रमाणित करते हैं कि सैंधव वासी भेड़ के बालों से गरम वसन बनाते थे। तद्युगीन समाज में ऋतु के अनुसार सूती एवं ऊनी वस्त्र पहने जाते थे।

यद्यपि तद्युगीन सभ्यता में रेशमी वस्त्र के प्रचलन का कोई संकेत हमें उपलब्ध नहीं होता, फिर भी उस विकसित एवं समुन्नत समाज में रेशम का चलन भी अवश्य रहा होगा। तद्युगीन वस्त्र-उद्योग उत्कृष्टता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। सैंधव वासी विभिन्न प्रकार के परिधानों के प्रचलन (फैशन) से परिचित हो चुके थे।

(iii) **आभूषण**—सैंधव-सभ्यता-युग के स्त्री एवं पुरुष दोनों ही आभूषणों के प्रेमी थे। उत्खनन में जितनी भी स्त्री-पुरुष की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, सभी आभूषणों

---

1. त्रिपाठी, रमाशंकर, वही, पृ० 20–21—".....typical convoluted structure."

से सुसज्जित हैं। स्त्रियाँ मुख्यतः नथनी, करधनी, बुन्दे, हँसली, भुजबन्ध, कड़े, पाजेब एवं छल्ले आदि धारण करती थीं। मूर्तियों से कुछ ऐसे गहनों का संकेत मिला है जिन्हें स्त्री एवं पुरुष दोनों ही पहनते रहे होंगे। इन गहनों में कंगन, मुद्रिका, कण्ठ-हार आदि उल्लेखनीय हैं। समृद्ध व्यक्ति हाथीदाँत, सोने, चाँदी, मणियों, नगों एवं जवाहिरात के गहने धारण करते थे। निर्धन व्यक्तियों के आभूषण शंख, हड्डी, घोंघा, पकी मिट्टी एवं ताँबे के बने होते थे। तद्युगीन अलंकरणों चोटी-चक्क (चोटी में बाँधनेवाला) सीसफूल, माँगपट्टी, माथे की केशान्त-रेखा में पहनने के लिए पात (Fillet), गुलूबन्द एवं मटरमाला आदि गहनों का बहुत चलन था। उस काल में अकीक को बेधकर, उसकी गुरियों को गुहकर करधनी भी बनाई जाती थी।

(iv) शृंगारिक सामग्री—सैन्धव सभ्यता के उत्खनन में पीतल के दर्पण एवं कंघियाँ प्राप्त हुई हैं। उस युग की स्त्रियाँ बीच से माँग निकालकर बाल बनाती थीं। कभी कभी वे जूड़ा भी बनाती थीं। कांस्य मूर्तियों से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ बालों का एक जूड़ा बनाकर कान के पास से जूड़े को दाहिने कन्धे पर लटका लेती थीं। सिन्धु की उपत्यका में शृंगार-प्रसाधन के अन्तर्गत काजल, पाउडर, लिपस्टिक, सिन्दूर एवं रूज आदि का प्रयोग करने के चिह्न प्राप्त हुए हैं। कुछ इतिहासकारों का मत है कि तद्युगीन दर्पण शीशे का नहीं होता था, वरन् विशेष धातु को घिसकर चमका लिया जाता था। उत्खनन में झावें (शरीर का मैल साफ करने के लिए) भी उपलब्ध हुए हैं।

तत्कालीन पुरुष दाढ़ी एवं गलमुच्छे रखते थे। कुछ मूर्तियों से ज्ञात होता है कि कुछ पुरुष सुमेरियन सभ्यता के अनुसार ओठ के ऊपर के बाल सफाचट रखते थे। पुरुष अपने सिर के बाल आगे से पीछे की ओर काढ़कर बाँधते थे। वे लोग कभी कभी सर पर पट्टी भी बाँध लेते थे। उत्खनन में उस्तरे भी प्राप्त हुए हैं, जो इस बात का संकेत देते हैं कि उस युग के पुरुष दाढ़ी बनाते थे। सर जान मार्शल के अनुसार "यहाँ का साधारण नागरिक सुविधा और विलास का जिस मात्रा में उपयोग करता था, उसकी तुलना समकालीन सभ्य संसार के अन्य भागों से नहीं हो सकती।" किसी भी समाज में विलासिता एवं शृंगारिकता का प्रवेश तभी होता है, जब समाज की आर्थिक नींव मजबूत होती है। सैन्धव सभ्यता युग की शृंगारप्रियता एवं अलंकरणप्रियता तद्युगीन खुशहाल एवं समृद्ध जीवन की बोधक हैं।

(v) आमोद-प्रमोद के साधन—मोहेनजोदड़ो एवं हड़प्पा के ध्वंसावशेषों में तद्युगीन समाज में प्रचलित आमोद-प्रमोद के साधनों के संकेत प्राप्त हुए हैं। किसी भी समाज के व्यक्ति मनोरंजन की ओर तभी उन्मुख होते हैं, जब उनकी अनिवार्य

आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं। मनोरंजन की व्यवस्था स्वस्थ एवं सुखी समाज में ही परिलक्षित होती है। उत्खनन में उपलब्ध मनोरंजन के प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि सैन्धव समाज पूर्णतः सुखी, समृद्ध एवं स्वस्थ था। व्यस्त जीवन में आमोद-प्रमोद की उपयोगिता से सैन्धव वासी पूर्णतः परिचित थे। तद्युगीन समाज में जीवन को सरस, सशक्त एवं सप्राण बनाने के हेतु निम्नांकित साधनों द्वारा व्यक्ति अपना मनोरंजन करते थे :

(1) शिकार—सैन्धव वासी जानवर एवं मछली दोनों का ही शिकार करते थे। उत्खनन में दो ताबीज उपलब्ध हुए हैं। इन ताबीजों पर क्रमशः हरिण एवं जंगली बकरे को तीर से मारे जाने का चित्र अंकित है। अरण्य-पशु के शिकार का तद्युगीन प्रमुख साधन तीर था। भाले (फल), तलवार एवं कटार भी खुदाई में प्राप्त हुए हैं। ये अस्त्र या तो आत्म-रक्षार्थ अथवा शिकार के हेतु ही प्रयोग में लाये जाते होंगे। उत्खनन में कुछ गोलियाँ भी सुलभ हुई हैं। ये गोलियाँ सुमेरियन उत्खनन में उपलब्ध गोलियों से साम्य रखती हैं। मछली मारने के हेतु अनोखे ढंग के काँटे भी खुदाई में प्राप्त हुए हैं। अतः मछलियों का शिकार जाल की अपेक्षा काँटे से किया जाता रहा होगा। शिकार निश्चय ही शासक वर्ग, उच्च राज्याधिकारियों एवं जमींदारों आदि का शौक रहा होगा। सम्भव है, निम्न वर्ग के लोग जीविका के हेतु भी आखेट करते होंगे।

(2) शतरंज—सैन्धव समाज में शतरंज प्रमुख एवं जनप्रिय खेल माना जाता था। यह खेल समयुगीन अन्य सभ्यताओं में भी प्रचलित था। शतरंज का चलन भी उच्च वर्ग में अधिक था। साधारण जन पासा, चौपड़ एवं गोलियों के खेल से मन बहलाते थे। उत्खनन में शतरंज के मोहरे, पासा एवं चौपड़ की गोलियाँ (पत्थर की) उपलब्ध हुई हैं।

(3) **पक्षी एवं पशु-पालन**—सैंधव उत्खनन में एक ऐसा खिलौना प्राप्त हुआ है, जो पिंजडे के आकार का है और उसमें पक्षी बन्द हैं। यह सिद्ध करता है कि तद्युगीन समाज में पक्षी-पालन का शौक प्रचलित था। उपलब्ध साक्ष्यों से ही यह भी ज्ञात होता है कि शिकार-योग्य पक्षियों में तोता, मोर, मुर्गा, मुर्गी आदि प्रमुख थे। खुदाई में उल्लू का चित्र भी मिला है, किन्तु उल्लू पालतू पक्षी नहीं होता होगा।

चिड़ियों की लड़ाई के द्वारा भी सैंधव वासी अपना मनोरंजन किया करते थे। इस खेल के हेतु विशेष मुर्गे पाले जाते थे। निश्चय ही यह शौक शासकों, विलासियों, भूपतियों एवं वणिकों का रहा होगा।

आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं। मनोरंजन की व्यवस्था स्वस्थ एवं सुखी समाज में ही परिलक्षित होती है। उत्खनन में उपलब्ध मनोरंजन के प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि सैन्धव समाज पूर्णतः सुखी, समृद्ध एवं स्वस्थ था। व्यस्त जीवन में आमोद-प्रमोद की उपयोगिता से सैन्धव वासी पूर्णतः परिचित थे। तद्युगीन समाज में जीवन को सरस, सशक्त एवं सप्राण बनाने के हेतु निम्नांकित साधनों द्वारा व्यक्ति अपना मनोरंजन करते थे :

(1) शिकार—सैन्धव वासी जानवर एवं मछली दोनों का ही शिकार करते थे। उत्खनन में दो ताबीज उपलब्ध हुए हैं। इन ताबीजों पर क्रमशः हरिण एवं जंगली बकरे को तीर से मारे जाने का चित्र अंकित है। अरण्य-पशु के शिकार का तद्युगीन प्रमुख साधन तीर था। भाले (फल), तलवार एवं कटार भी खुदाई में प्राप्त हुए हैं। ये अस्त्र या तो आत्म-रक्षार्थ अथवा शिकार के हेतु ही प्रयोग में लाये जाते होंगे। उत्खनन में कुछ गोलियाँ भी सुलभ हुई हैं। ये गोलियाँ सुमेरियन उत्खनन में उपलब्ध गोलियों से साम्य रखती हैं। मछली मारने के हेतु अनोखे ढंग के काँटे भी खुदाई में प्राप्त हुए हैं। अतः मछलियों का शिकार जाल की अपेक्षा काँटे से किया जाता रहा होगा। शिकार निश्चय ही शासक वर्ग, उच्च राज्याधिकारियों एवं जमींदारों आदि का शौक रहा होगा। सम्भव है, निम्न वर्ग के लोग जीविका के हेतु भी आखेट करते होंगे।

(2) शतरंज—सैन्धव समाज में शतरंज प्रमुख एवं जनप्रिय खेल माना जाता था। यह खेल समयुगीन अन्य सभ्यताओं में भी प्रचलित था। शतरंज का चलन भी उच्च वर्ग में अधिक था। साधारण जन पासा, चौपड़ एवं गोलियों के खेल से मन बहलाते थे। उत्खनन में शतरंज के मोहरे, पासा एवं चौपड़ की गोलियाँ (पत्थर की) उपलब्ध हुई हैं।

(3) **पक्षी एवं पशु-पालन**—सैंधव उत्खनन में एक ऐसा खिलौना प्राप्त हुआ है, जो पिंजडे के आकार का है और उसमें पक्षी बन्द हैं। यह सिद्ध करता है कि तद्युगीन समाज में पक्षी-पालन का शौक प्रचलित था। उपलब्ध साक्ष्यों से ही यह भी ज्ञात होता है कि शिकार-योग्य पक्षियों में तोता, मोर, मुर्गा, मुर्गी आदि प्रमुख थे। खुदाई में उल्लू का चित्र भी मिला है, किन्तु उल्लू पालतू पक्षी नहीं होता होगा।

चिड़ियों की लड़ाई के द्वारा भी सैंधव वासी अपना मनोरंजन किया करते थे। इस खेल के हेतु विशेष मुर्गे पाले जाते थे। निश्चय ही यह शौक शासकों, विलासियों, भूपतियों एवं वणिकों का रहा होगा।

उत्खनन में प्राप्त मूर्तियों, चित्रों एवं खिलौनों से विदित होता है कि सैंधव वासी घरों में हाथी, कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, हिरन एवं खरगोश आदि पालते थे। हाथी एवं कुत्ते शिकार के हेतु भी पाले जाते होंगे। व्यावसायिक दृष्टि से सिन्धु निवासी गाय, बैल, भैंसा, ऊँट, भेड़ एवं गधे आदि पालते थे। हिरन भी सैंधव समाज में पालतू पशु माना जाता था। खुदाई में प्राप्त एक मुद्रा पर व्याघ्र एवं अन्य पशु की भिड़न्त चित्रांकित है। संभवतः उस युग में पशुओं की लड़ाई भी मनोरंजन का एक साधन रही होगी।

(4) **खेल-कूद**—तद्युगीन पुरुष मनोरंजन एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से खेल-कूद में भाग लेते थे। सैंधव वासी शारीरिक विकास का महत्व समझते थे। वर्तमान 'ओलम्पिक' की भावना उस सुदूर अतीत काल में भी एलम एवं मेसोपोटामिया की सभ्यता में जीवन्त थी। जब सैंधव सभ्यता का समयुगीन विदेशी सभ्यताओं से सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता था, तब निश्चय ही सैंधव वासी भी ओलम्पिक जैसी तत्कालीन अन्तरराष्ट्रीय स्पर्धाओं में भाग लेते रहें होंगे।

(5) **संगीत**—सैंधव वासी कला-प्रेमी थे। वे विशेषतः संगीत में अधिक रुचि लेते थे। उत्खनन में उपलब्ध मोहरों पर तुरही एवं वीणा का चित्रांकन तद्युगीन समाज में प्रचलित संगीत-प्रेम का बोधक है। सैंधव-सभ्यता-युगीन कांस्य की नृत्य-मूर्तियाँ नृत्य के प्रति समाज के प्रेम की द्योतक हैं। संभव है, उस युग में नगर-वधुओं का भी अस्तित्व रहा हो। उत्खनन में प्राप्त नर्तकी की मूर्तियों को मार्शल देवदासियों की मूर्तियाँ मानते हैं। संभव है, उस युग में साधारण लड़कियाँ भी नृत्य सीखती रही हों। उत्खनन में प्राप्त एक मुद्रा पर सामूहिक ढंग से खेल-वादन का चित्र उत्कीर्ण है। इससे यह विदित होता है कि तद्-युगीन समाज में व्यक्ति सामूहिक रूप से भी मनोरंजन करते थे।

(6) **खिलौने**—सैंधव समाज में बाल मनोरंजन के हेतु विभिन्न साधनों की अनुपम व्यवस्था व्याप्त थी। खेल के द्वारा बालकों के शारीरिक एवं मानसिक विकास का इस युग में पूरा ध्यान रखा जाता था। बालकों के चतुर्मुखी विकास एवं मनोरंजन के निमित्त विभिन्न प्रकार के खिलौने प्राप्त हुए हैं। इन खिलौनों में पशु-पक्षी एवं नर-नारी के चित्रांकित खिलौनों के अतिरिक्त सीटियाँ, झुनझुने एवं गाड़ियाँ आदि प्रमुख थीं। उत्खनन से मिट्टी एवं ताम्र की बनी गाड़ियाँ तथा रथ के पहिए प्राप्त हुए हैं। वूली के मतानुसार सैन्धव सभ्यता में प्रचलित रथ (खिलौना) जैसा खिलौना उर में भी पाया गया है। मैके महोदय ने सैन्धव उत्खनन में प्राप्त गाड़ियों की तुलना मेसोपोटामिया में

प्राप्त खिलौना गाड़ियों से की है। कुछ खिलौना गाड़ियों में बैल जुते हुए पाये गये हैं और कुछ पर चिड़ियाँ बैठी हुई मिली हैं। बूली के मतानुसार ये खिलौना गाड़ियाँ गाड़ियों के सर्वप्राचीन नमूने हैं। तद्युगीन खिलौने मिट्टी से साधारण ढंग से ही नहीं गढ़ दिये जाते थे, वरन् वे तकनीकी दृष्टि से अनुपम एवं उत्कृष्ट होते थे। खिलौनों की तकनीकी उत्कृष्टता का प्रमाण हमें कुछ विशेष खिलौनों से होता है—जैसे, एक खिलौने में बैल का सिर हिलता है, एक हाथी का सिर दबाने पर शब्द होता है। एक ऐसा भी खिलौना प्राप्त हुआ है, जिसके शरीर का ऊर्ध्व भाग पशु के समान एवं अधो भाग पक्षी के समान है। उस काल में खिलौनों के द्वारा बच्चों को प्रति दिन की वास्तविकताओं से अवगत कराया जाता था, क्योंकि कुछ ऐसे खिलौने भी उत्खनन में प्राप्त हुए हैं, जिनपर प्रतिदिन की घटनाओं और समस्याओं का चित्रण मिलता है।

(ई) मृतक का अन्तिम संस्कार

सैंधव सभ्यता इतनी अधिक विकसित हो चुकी थी कि मृतकों के अन्तिम संस्कार का महत्व सैंधव वासी भली भाँति जानने लगे थे। हड़प्पा, मोहेनजोदड़ो एवं लोथल के उत्खनन अवशेषों से ज्ञात होता है कि सैंधव समाज में मृतक संस्कार सम्पन्न करने के तीन प्रमुख तरीके थे। यथा,

(i) सर्वांग-भू-निखात (कब्र-व्यवस्था)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत मृतक का पूरा शरीर मिट्टी में पर्याप्त गहराई में गाड़ दिया जाता था तथा उसके ऊपर समाधि अथवा कब्र बना देते थे। मृत शरीर भूमि में ही गलकर समाप्त हो जाता था। सिंधु उपत्यका के उत्खनन में काफी अस्थि-पंजर उपलब्ध हुए हैं। 1937 एवं 1947 के उत्खनन कार्य में हड़प्पा में एक विशाल कब्रगाह का अवशेष प्राप्त हुआ है। इस कब्रिस्तान में 57 कब्रों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं।[1] कब्र में शव लम्बोत्तर रूप में लिटाया हुआ एवं सिर उत्तर की ओर पाया गया है। उस युग में मृतकों के साथ आभूषण एवं शृंगारिक वस्तुएँ (शीशा, कंघा, घोंघे के चम्मच, आदि) भी रखी जाती थीं। मृतक व्यक्ति को चूड़ी, हार, कर्णफूल, मुद्रिका एवं पायजेब आदि आभूषण पहना दिये जाते थे। एक अस्थि-कंकाल की उँगली में ताम्र-मुद्रिका प्राप्त हुई है। एक मानव कंकाल के साथ एक बकरी का कंकाल भी मिला है। संभवतः मृतक के साथ पशु-पक्षी आदि भोज्य पदार्थ के रूप में रखकर मृतकों को संतुष्ट किया जाता

---

1. घोष, ए०, एंशिएण्ट इण्डिया, खण्ड 3, पृ० 83; ह्वीलर, वही, पृ० 66।

था। कब्र में कंकाल के साथ अलंकृत बर्तन भी प्राप्त हुए हैं। मृतक के साथ उपर्युक्त वस्तुएँ रखने का उद्देश्य यही रहता होगा कि मृतक की आत्मा भूखी-प्यासी न रहे। यह प्रमाण सैंधव वासियों के जीववाद एवं पुनर्जन्म में आस्था को प्रकट करता है।

मोहेनजोदड़ो के उत्खनन में प्राप्त 21 कंकालों में से सात मानव कंकाल सार्वजनिक स्थल में और एक कंकाल कमरे में पाया गया है। राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार[1] प्राप्त अस्थियों में मानव की तीन प्रकार की नस्लों की आकृतियाँ मिली हैं—आदिम निषाद वंशीय, द्रविड़ वंशीय एवं आर्यवंशीय। मोहेनजोदड़ो में कंकाल अवश्य प्राप्त हुए हैं, परन्तु सतत प्रयत्न के बावजूद कहीं भी कब्रिस्तान का संकेत नहीं मिला है। अतः मोहेनजोदड़ो में शव गाड़ने की प्रथा नहीं रही होगी। हड़प्पा में प्राप्त कब्रिस्तान भी काफी बाद का प्रतीत होता है। लोथल के उत्खनन में कहीं-कहीं स्त्री एवं पुरुष के शव साथ-साथ गड़े हुए मिले हैं।

(ii) **आंशिक भू-निखात व्यवस्था**—इस व्यवस्था के अन्तर्गत, पहले मृतक के शव को पशु-पक्षियों के भोज्य हेतु खुला छोड़ दिया जाता था। पशु एवं पक्षी के सन्तुष्ट हो लेने पर, शेष बचे हुए कंकाल को मिट्टी में दफनाया जाता था। ह्वीलर इन्हें फ्रैक्शनल बेरियल मानते हैं।[2] उत्खनन में कहीं-कहीं हड्डियों का समूह प्राप्त हुआ है। बच्चों का पूरा शरीर ही गाड़ा जाता था।

(iii) **दाह-संस्कार**—सर्वांग एवं आंशिक भू-निखात का संकेत हमें मोहेनजोदड़ो के उत्खनन में कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ है। यहाँ पर निश्चय ही शवों को जलाया जाता होगा। मैके के अनुसार,[3]

> "... the complete absence of burial... points to cremation as the chief mode of disposal of the dead."

मोहेनजोदड़ो के उत्खनन में प्राप्त भस्म रखनेवाले घट (Urns) दाह संस्कार के सशक्त प्रमाण हैं। इन बर्तनों में जली हुई हड्डियाँ अथवा फूल एवं राख रखी हुई प्राप्त हुई है। इनके साथ ही पितरों को समर्पित की गयी कुछ वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। उस समय ये भस्मी-पात्र गाड़ दिये जाते थे और उनके ऊपर समाधि बना दी जाती थी। कुछ घटों में न तो हड्डियाँ ही मिलीं, न राख प्राप्त हुई, वरन् बलि देने

1. मुकर्जी, राधाकुमुद, वही, पृ० 26।
2. ह्वीलर, वही, पृ० 86।
3. मैके, वही, खण्ड 1, पृ० 648।

की कुल्हाड़ी एवं अन्य वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं। संभवतः उस युग में पशु आदि की बलि दी जाती होगी और हड्डी (फूल) के टुकड़े या चूरा करके मिट्टी में छितरा दिया जाता होगा या नदी में प्रवाहित कर दिया जाता होगा। आज भी पंजाब में ऐसी प्रथा व्याप्त है। आरेल स्टाइन महोदय को बलूचिस्तान के उत्खनन कार्य में अनेक समाधिस्थ भस्मी-पात्र प्राप्त हुए। भस्मी-पात्रों पर सुन्दर अलंकरण एवं पशुओं आदि का चित्रांकन भी पाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सैन्धव सभ्यता में मृतक संस्कार के हेतु दाह-क्रिया ही सर्वाधिक प्रचलित थी। सैन्धव वासी दाह-संस्कार का वैज्ञानिक महत्व समझते थे। मृत शरीर को जलाकर सैन्धव वासी वातावरण को शुद्ध बनाते थे।

लोथल के उत्खनन में एक स्थान पर लाशों का ढेर प्राप्त हुआ है। संभवतः युद्ध आदि के पश्चात् शवों को एक साथ ही गाड़ दिया जाता होगा। संभव है, ऐसी लाशें खुली भी पड़ी रही हों और यह काल सैन्धव सभ्यता के ह्रास का काल रहा हो। बाद में स्वयं ही बाढ़ आने एवं नगर ढह जाने से ये शव-समूह दब गये होंगे। फिर भी, यह प्रमाणित होता है कि मृतक शरीर को विधिपूर्वक जलाने एवं दफनाने की प्रक्रिया से सैंधव वासी भली भाँति परिचित थे। सामान सहित शव भू-निखात की प्रथा पिरामिड व्यवस्था से अति साम्य रखती है। अन्तिम संस्कार सम्पन्न करने के प्रति सैंधव वासियों का उत्साह यह भी प्रतिपादित करता है कि सैंधव वासी वैदिक संस्कारों की भाँति अन्य समस्त प्रारम्भिक संस्कार भी सम्पन्न करते रहे होंगे।

(ङ) शिक्षा एवं लिपि-ज्ञान

सैंधव समाज में प्रचलित शिक्षा और लिपि का हमें पर्याप्त ज्ञान नहीं हो पाया है। संभवतः उत्खनन में उपलब्ध बड़े बड़े हालनुमा कमरे पाठशाला के रूप में उपयोग में लाये जाते रहे हों। किन्तु इतना सत्य है कि सैंधव वासी लिखना एवं पढ़ना अवश्य जानते थे। वे पूर्णतः निरक्षर नहीं थे। यद्यपि उस काल का कोई लेख-पत्र सुलभ नहीं हुआ है, किन्तु मृदाओं पर उत्कीर्ण लेख अवश्य ही तद्युगीन लेखन-ज्ञान के द्योतक हैं। उत्खनन में लिपि-युक्त पांच मोहरें प्राप्त हुई हैं। तद्युगीन लिपि चीन देश की लिपि के समान चित्रात्मक होती थी। यह लिपि दायीं से बायीं, और कहीं कहीं बायीं से दायीं ओर लिखी हुई प्राप्त हुई है। कहीं पर एक ही पंक्ति में दायीं से बायीं और पुनः दूसरी पंक्ति में बायीं से दायीं ओर भी लिखी हुई मिली है। लिपि की उपर्युक्त प्रणाली 'बस्त्रोफेदन' कहलाती है। यह लिपि ब्राह्मी लिपि से पूर्णतः भिन्न है।

तत्कालीन लिपि अक्षर-प्रधान न होकर ध्वनि-प्रधान होती थी। उस लिपि में कई चिह्नों को मिलाकर एक शब्द बनाया जाता था और कई लकीरों (कभी-कभी

12 तक) को मिलाकर एक चिह्न बनता था। उन चिह्नों पर यत्र-तत्र मात्रा भी लगाई जाती थी। तद्युगीन लिपि के ऐसे 396 चिह्न उपलब्ध हुए हैं। यह लिपि समयुगीन विदेशी सभ्यताओं की लिपि से साम्य रखती है। मोहरों के अतिरिक्त धातु के बर्तनों, ताँबे के टुकड़ों एव मिट्टी के बर्तनों पर भी लिपि अंकित पाई गई है। इससे प्रकट होता है कि सैंधव वासी निश्चय ही शिक्षित थे एवं लिपि उनका मूल आविष्कार था।[1] तद्युगीन समाज में विकसित कला, ज्ञान एवं विज्ञान उसकी व्यापक शिक्षा के ही परिणाम होंगे।

सैंधव वासी चिकित्सा-ज्ञान से भी पूर्ण परिचित थे। वे खगोल विद्या के द्वारा ऋतुओं, ग्रहों एवं नक्षत्रों का भी अध्ययन करते थे। वे बाढ़ का पूर्वाभास पा लेते थे। उन्हें विभिन्न प्रकार के रंग बनाने का भी ज्ञान था। उस काल में कलाओं के समस्त रूप—ललित कला, वास्तु कला, चित्र कला एवं स्थापत्य कला आदि-विकसित हो चुके थे। इन लोगों को नाप-तौल की पद्धति का भी ज्ञान था। वे अंक-गणित, रेखागणित एवं दशमलव-प्रणाली से भी परिचित थे।

(ऊ) धातु, पाषाण एवं मृत्तिका उपकरण

सैंधव सभ्यता युग में रक्षा एवं आखेट के हेतु धातु के औजार बनाये जाने लगे थे। सैंधव वासियों को सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा एवं टिन आदि धातुओं का ज्ञान था। किन्तु वे लौह के ज्ञान से अनभिज्ञ थे। उस युग में टिन एवं ताँबा मिलाकर काँसा तैयार किया जाता था। हथियार मुख्यतः ताँबे एवं काँसे के बनाये जाते थे। लड़ाई एवं शिकार के हेतु सैंधव वासी बाण, भाला, कुल्हाड़ी, छुरी एवं गदा बनाते थे। ये लोग तलवार एवं अंग-रक्षकीय कवच से अपरिचित थे। औजारों में हँसिया, आरी, रुखानी एवं उस्तरे आदि के प्रमाण उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त, तश्तरी, प्याले, कलसे एवं सिंगारदानियाँ आदि भी धातु की ही बनाई जाती थीं। मोहेनजोदड़ो के उत्खनन में सबसे नीचे के तल में पीतल भी प्राप्त हुई है।

सैंधव समाज में पत्थरों के बटखरों (Weights) का पर्याप्त चलन था। ये बटखरे चकमक या सिलेटी पत्थर के बनाये जाते थे। ये बटखरे चौकोर एवं तिकोने दोनों आकार के बनाये जाते थे। रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार,[2]

---

1. हण्टर, जी० आर०; स्क्रिप्ट ऑव् हड़प्पा ऐण्ड मोहेनजोदड़ो, 1934; हेरास, एच०, द स्टोरी ऑव् द मोहेनजोदड़ो साइन्स; बैडेल, एल० ए०, दि इण्डो-सुमेरियन सील्स डिसाइफर्ड, लन्दन, 1925; प्राणनाथ, इण्डस बैली स्क्रिप्ट।
2. त्रिपाठी, रमाशंकर, वही, पृ० 20।

"They were made with greater accuracy and consistency than those of Elam and Mesopotamia."

उस युग में 16 अनुपात के बटखरों (120–898 रत्ती या 13.71 ग्राम) का प्रचलन था। उत्खनन में काँसे एवं पत्थर का एक एक मापक दण्ड भी प्राप्त हुआ है। चौधरी के अनुसार यह सोलह यूनिट का था।[1] अतः इससे यह परिलक्षित होता है कि सैंधव वासी लंबाई की ठीक नाप करने में प्रवीण थे।

उस युग में चाक पर मिट्टी के वर्तन भी बनाये जाते थे। उत्खनन में ढेरों कुल्हड़ प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त मटकों, मिट्टी की तश्तरियों, प्यालियों एवं अँगीठियों के अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं। संभवतः मृत्तिका के बर्तनों का भी चलन निम्न वर्ग में रहा होगा। बर्तनों पर बहुरंगे रेखांकन एवं चित्रांकन भी किये जाते थे। खिलौनों एवं बर्तनों पर अनोखी चमक यह सिद्ध करती है कि सिन्धु-वासी इन्हें विधिपूर्वक चमकाते थे। पकी हुई सोफयानी मिट्टी से भी वस्तुएँ बनाई जाती थीं। उस युग की बर्तनों को आग में पकाने एवं उनपर पक्का रंग देने की प्रक्रिया अति विशिष्ट एवं उत्कृष्ट थी। बर्तनों पर लाल पालिश करके, ऊपर से काले रंग के प्रयोग की शैली मूलतः सैंधवीय शैली थी। इस शैली से तत्कालीन विदेशी सभ्यताएँ भी अपरिचित थीं। सैंधव वासी मिट्टी एवं पत्थर के दीप भी बनाते थे।

(ए) रहन-सहन के विशेष तरीके

तद्युगीन जन पलंग एवं चारपाई के प्रयोग से भी परिचित थे। वे लोग चटाइयों का प्रयोग भी करते थे। मोहेनजोदड़ो की खुदाई में स्वस्तिक का चिह्न (卐) भी प्राप्त हुआ है। यह चिह्न समयुगीन अन्य सभ्यताओं में भी पाया गया था। यह चिह्न निश्चय ही मांगलिक माना जाता होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी शुभ कार्य के पूर्व इस चिह्न से शगुन कर लिया जाता था। उस युग में चौक अथवा अल्पना बनाने की प्रथा भी प्रचलित थी। हड़प्पा के उत्खनन में प्राप्त अनेक गुड़ियों से तद्युगीन जनों की कला-प्रियता का भान भी होता है। सैंधव वासी पत्थर के टुकड़ों पर सोने की टोपी चढ़ाकर गुड़ियाँ बनाते थे।

गोर्डन महोदय का मत[2] है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता में दास-प्रथा भी वर्तमान थी। वे 75 मृण्मूर्तियों के आधार पर दास-प्रथा के अस्तित्व को स्वीकार करते

---

1. राय चौधरी, कृष्ण, वही, पृ० 40।
2. गोर्डन, डी० एच०, प्री-हिस्टरिक बैकग्राउन्ड ऑव् इण्डियन कल्चर।

हैं। परन्तु, कौशाम्बी महोदय इस विचार से असहमत हैं।[1] तत्कालीन समाज में जादू-टोने का भी प्रचलन था। सैंधव वासी भूत-प्रेत की विचारधारा से भी प्रभावित थे। इस अन्धविश्वास के परिणाम-स्वरूप पुरोहित वर्ग का समाज पर गहरा प्रभाव व्याप्त था।

निष्कर्ष

सैंधव समाज समासतः सुखी, सम्पन्न, समृद्ध, स्वस्थ एवं पूर्णतः सन्तुष्ट था। तद्युगीन सामाजिक वातावरण परस्पर द्वेष-भाव से दूर, सौहार्द एवं प्रेममय था। सैंधव समाज में तलवार जैसे आक्रामक शस्त्र एवं कवचादि जैसे रक्षात्मक उपकरणों का अभाव, यह प्रमाणित करता है कि सैंधव वासी युद्ध-प्रेमी नहीं, शान्तिप्रिय थे। वे अपना समय युद्ध की अपेक्षा समाज के बहुमुखी उत्थान में लगाते थे। सुख-समृद्धि का लक्ष्य तद्युगीन व्यक्ति-विशेष तक ही सीमित न था, वरन् प्रत्येक व्यक्ति अपना हित सम्पूर्ण समाज की भलाई में निहित समझता था। फलतः तत्कालीन सामाजिक संगठन का लक्ष्य सार्वजनिक जीवन को सुखमय, कलापूर्ण, सरस एवं मांगलिक बनाना था। मार्शल के अनुसार सैंधव सभ्यता का एक साधारण सा नागरिक, अन्य समयुगीन सभ्यताओं की अपेक्षा अधिक सुखी था। सिन्धु घाटी की सभ्यता अपूर्व, अद्वितीय, उत्कृष्ट, परिष्कृत एवं तत्कालीन अन्यान्य सभ्यताओं में सर्वोच्च थी। उत्कृष्ट सभ्यता निःसन्देह पूर्णतः स्वस्थ समाज के अंक में ही पनपती है, ईदृश. सैंधव समाज सम्पन्नता एवं सन्तुलित जीवन-बोध का साकार रूप था।

□